

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 25: तीन गुण तथा परम गति

5 October 2026



द्वारका में भगवान् अपने प्रिय उद्धव के समक्ष सत्त्व, रजस् तथा तमस् की गूढ़ संरचना उद्घाटित करते हैं — वे तीन सूत्र जिनसे देहधारी जीव का प्रत्येक विचार, कर्म तथा गति बुनी गई है — और भक्ति का वह एक मार्ग, जिससे जीव इस बुनावट से सदा के लिए मुक्त हो सकता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण के पावन पृष्ठों से होकर हमारी यह निरन्तर यात्रा है। भगवान् अब एक अत्यन्त व्यावहारिक विषय की ओर मुड़ते हैं: सत्त्व, रजस् तथा तमस् मनुष्य के मन, उपासना तथा गति को किस प्रकार अपने वश में करते हैं, और एक सच्चा साधक इन तीनों से परे होकर कैसे उन्हीं में प्रतिष्ठित हो सकता है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)
- अध्याय: 25 (पञ्चविंश प्रवचन)

- अध्याय शीर्षक: प्रकृति के तीन गुण तथा उनसे परम गति
- प्रधान वक्ता: श्रीकृष्ण, उद्धव को उपदेश देते हुए; समस्त सुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को कहा गया
- प्रधान श्रोता: उद्धव; तथा राजा परीक्षित
- मुख्य स्थान: द्वारका, भगवान् के उद्धव के साथ निरन्तर संवाद में
- केन्द्रीय विषय: प्रकृति के तीन गुण — सत्त्व, रजस् तथा तमस् — देहधारी जीव के जीवन के प्रत्येक अंग को कैसे शासित करते हैं, और भक्ति के द्वारा जीव इनसे परे होकर भगवान् तक कैसे पहुँचता है
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 25, श्लोक 1-36
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 24 में, भगवान् ने उद्धव को सांख्य के प्राचीन सिद्धान्त का उपदेश दिया — कैसे एक अखण्ड सत्ता माया के द्वारा प्रकृति तथा पुरुष की द्विविधता में प्रकट हुई, कैसे तीन गुणों से सम्पूर्ण सृष्टि का विस्तार हुआ, और कैसे प्रलय में यह सब पुनः उन्हीं में समा जाता है। जीव को उसके उद्गम का दर्शन कराकर, भगवान् अब उन्हीं शक्तियों का दर्शन कराते हैं जो उसके वर्तमान जीवन को आज भी गढ़ रही हैं।

भगवान् तीन गुणों की शक्ति समझाने का संकल्प करते हैं

श्रीकृष्ण ने पुनः आरम्भ किया, उद्धव की ओर मुड़कर उन्हें “पुरुषों में श्रेष्ठ” कहकर पुकारा। अब वे यह समझाएँगे, उन्होंने कहा, कि तीन गुणों में से प्रत्येक — एक-दूसरे से स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हुए — मनुष्य को किस प्रकार अपने वश में करता है और उसे क्या बना देता है।

श्रीभगवानुवाच

गुणानामसम्मिश्राणां पुमान् येन यथा भवेत् ।

तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः ॥ १ ॥

śrī-bhagavān uvāca guṇānām asammīśrāṇāṁ pumān yena yathā bhavet tan me puruṣa-varyedam upadhāraya śaṁsataḥ

अर्थ: भगवान् ने कहा: हे पुरुषों में श्रेष्ठ, अब मुझसे यह भली-भाँति समझो कि असंमिश्रित तीन गुणों में से प्रत्येक के द्वारा मनुष्य किस प्रकार प्रभावित होता है, जैसा मैं तुम्हें बताता हूँ। (स्कन्ध 11, अध्याय 25, श्लोक 1)

सत्त्व, रजस् तथा तमस् से उत्पन्न गुण

यह उपदेश देने की प्रतिज्ञा करके, भगवान् ने इसे सावधानी से प्रकट किया। सत्त्व मन तथा इन्द्रियों के संयम, सुविचार, सत्यता, करुणा, सन्तोष, विनम्रता, लालसा से मुक्ति, तथा स्वयं में रहने के शान्त आनन्द के रूप में प्रकट होता है। रजस् इन्द्रिय-सुख की चंचल भूख, अहंकार, अतृप्त लालसा, “मेरा” तथा “तेरा” के तीव्र भेद, प्रशंसा-प्रियता, तथा उग्र महत्त्वाकांक्षा के रूप में प्रकट होता है। और तमस् असहिष्णुता, मिथ्यात्व,

द्वेष, कलह, शोक, भ्रम, विषाद, अधिक निद्रा, भय तथा आलस्य के रूप में प्रकट होता है। भगवान् ने इन्हें प्रायः सम्पूर्ण रूप से इसलिए नामित किया ताकि उद्भव यह भी जान सकें कि तीनों मिलकर एक जीव को किस प्रकार शासित करते हैं।

“मैं शान्त हूँ,” “मैं कामुक हूँ,” या “मैं क्रोधित हूँ” — तथा “ये गुण मेरे हैं” — यह साधारण भाव भी तीनों गुणों का संयुक्त परिणाम है, जैसा कि मन, इन्द्रियों तथा प्राण के द्वारा किया गया प्रत्येक कर्म भी है। धर्म, अर्थ तथा काम का अनुसरण करने वाली भक्ति भी तीनों गुणों से एक साथ रंगी होती है: फल की कामना से किए गए कर्म रजस् से रंगे होते हैं, केवल गृहस्थ जीवन से आसक्ति तमस् से, तथा कर्तव्य के प्रति स्वयं के लिए शान्त भक्ति सत्त्व से।



सत्त्व, रजस् तथा तमस् जीव के भीतर स्वच्छ प्रकाश, चंचल गति तथा धूम्र कुहासे के रूप में एक साथ उठते हैं — प्रत्येक अपने ही गुण तथा जीव के "मैं" तथा "मेरा" के भाव को आकार देते हुए (श्लोक 2-8)।

स्वभाव तथा उपासना में गुणों को पहचानना

इन्हीं लक्षणों से मनुष्य के अन्तःस्वभाव को पढ़ा जा सकता है: आत्मसंयम सत्त्व को प्रकट करता है, चंचल कामना रजस् को, और क्रोध तमस् को। यही कुंजी उपासना पर भी लागू होती है — स्वार्थरहित कर्तव्य से उपासना सात्त्विक है; इन्द्रिय-सुख की कामना से उपासना राजसिक है; तथा किसी को हानि पहुँचाने की इच्छा से उपासना तामसिक है।

तब भगवान् ने एक अत्यन्त मूल्यवान् सत्य प्रकट किया: ये तीन गुण केवल देहधारी जीव को स्पर्श करते हैं — स्वयं को कभी नहीं। वे केवल जीव के मन में उत्पन्न होते हैं, और शरीर तथा इन्द्रियों से चिपककर जीव स्वयं ही इनसे बँध जाता है। गुण सदा यात्री के हैं, कभी उस साक्षी के नहीं जो यात्रा को देखता है।

सत्त्व, रजस् तथा तमस् के स्पष्ट लक्षण

भगवान् ने तब उद्धव को यह पहचानने का एक सरल उपाय दिया कि कौन-सा गुण प्रबल है। जब सत्त्व — उज्ज्वल, स्वच्छ तथा शान्त — प्रबल होता है, तब मनुष्य ज्ञान तथा सुख से चिह्नित होता है। जब रजस् — चंचल तथा आसक्त — प्रबल होता है, तब मनुष्य यश तथा धन की लालसा से तथा निरन्तर गति के बीच भी दुःख से ग्रस्त होता है। और जब तमस् — जो विवेक को धूमिल करता है — प्रबल होता है, तब मनुष्य शोक, भ्रम, अधिक निद्रा तथा दूसरों पर निराश्रित होने की दुर्दशा में गिरता है।

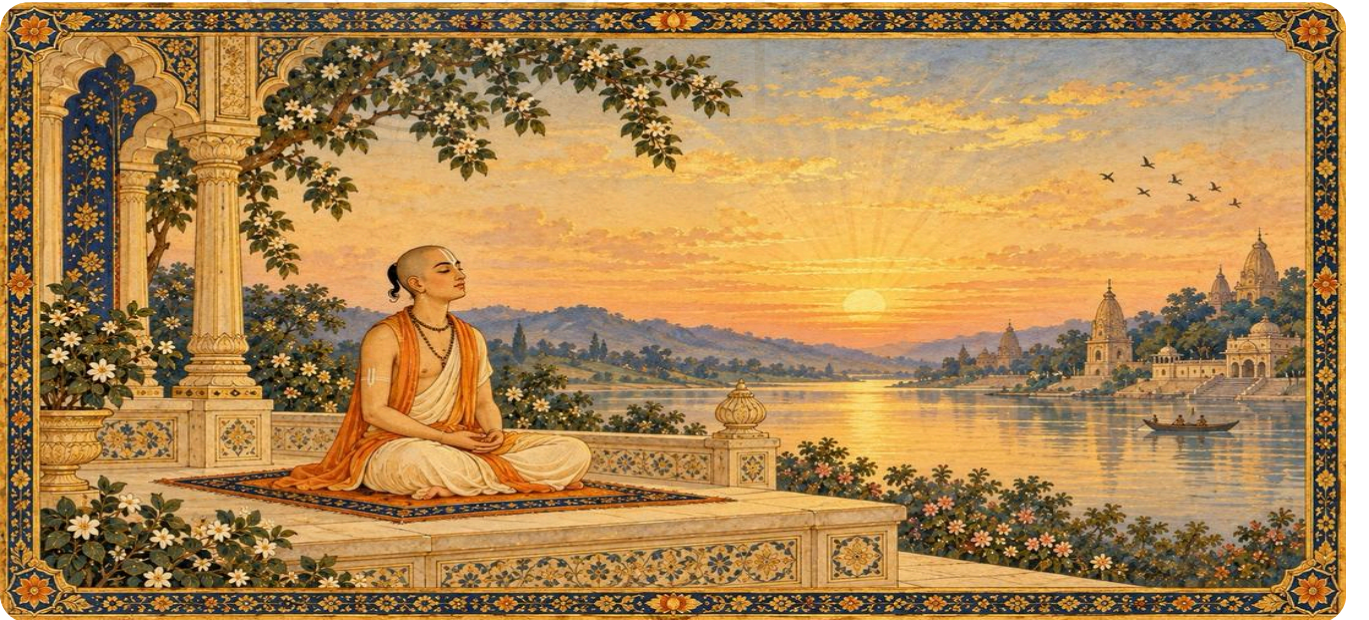
यदा चित्तं प्रसीदेत इन्द्रियाणां च निर्वृतिः ।

देहेऽभयं मनोऽसङ्गं तत् सत्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥ १६ ॥

yadā cittam prasīdeta indriyāṇāṁ ca nirvṛtiḥ dehe 'bhayaṁ mano-'saṅgam tat sattvaṁ viddhi mat-padam

अर्थ: जब चित्त स्वच्छ हो जाता है और इन्द्रियाँ अपने विषयों से शान्तिपूर्वक विमुख हो जाती हैं; जब शरीर भय से मुक्त तथा मन आसक्ति से रहित होता है — जानो कि यही सत्त्व है, जो जीव को मेरी ओर ले जाता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 25, श्लोक 16)

जब इसके विपरीत बुद्धि चारों दिशाओं में खिंची जाती है तथा मन को विश्राम नहीं मिलता, वह रजस् का लक्षण है; और जब विवेक ही धूमिल हो जाए तथा केवल अज्ञान और विषाद शेष रहे, वह तमस् का लक्षण है। भगवान् ने यह भी जोड़ा कि गुणों का यही उतार-चढ़ाव प्रत्येक हृदय में देवतुल्य, असुरतुल्य अथवा राक्षसतुल्य वृत्तियों को क्रमशः बलवान् करता है।



जब मन स्वच्छ, निर्भय तथा आसक्ति-रहित हो जाता है, भगवान् कहते हैं, जानो कि सत्त्व — जो स्वयं उनकी ओर ले जाता है — प्रबल हो गया है (श्लोक 16)।

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ते — तथा इनसे परे चतुर्थ अवस्था

मन के गुणों से भगवान् चेतना के गुणों की ओर मुड़े। जाग्रत् अवस्था सत्त्व की है, स्वप्न रजस् का है, और गहन, स्वप्नरहित सुषुप्ति तमस् की है। किन्तु इन तीनों में समान रूप से, इनसे अछूती, मौन बहती है एक चतुर्थ अवस्था — आत्मा, जो सदा वैसी ही रहती है।

सत्त्वाज्जागरणं विद्याद् रजसा स्वप्नमादिशेत् ।

प्रस्वापं तमसा जन्तोस्तुरीयं त्रिषु सन्ततम् ॥ २० ॥

sattvāj jāgaraṇaṁ vidyād rajasā svapnam ādiśet prasvāpaṁ tamasā jantōs turīyaṁ triṣu santatam

अर्थ: जाग्रत् अवस्था को सत्त्व से उत्पन्न जानो, स्वप्न को रजस् द्वारा शासित जानो; सुषुप्ति तमस् की है — जबकि एक चतुर्थ अवस्था इन तीनों में समान रूप से निरन्तर बहती है। (स्कन्ध 11, अध्याय 25, श्लोक 20)

इसी नियम से, वैदिक मार्ग के अनुयायी सत्त्व के द्वारा उत्तरोत्तर ऊपर उठते हैं; तमस् में डूबे हुए और नीचे, यहाँ तक कि अचर जीवन में भी उतरते हैं; जबकि रजस् से शासित मध्य लोक में, अर्थात् मनुष्य-जन्म में ही बने रहते हैं। मृत्यु के समय भी यही नियम लागू होता है: सत्त्व में डूबी आत्मा उच्च लोकों को प्राप्त होती है, रजस् में डूबी मनुष्य-लोक को लौटती है, तमस् में डूबी नरक को जाती है — किन्तु तीनों गुणों से परे उठी आत्मा कहीं नहीं जाती। वह सीधे उन्हीं के पास पहुँचती है।

सत्त्वे प्रलीनाः स्वयान्ति नरलोकं रजोलयाः ।

तमोलयास्तु निरयं यान्ति मामेव निर्गुणाः ॥ २१ ॥

अर्थ: सत्त्व में लीन होकर मरने वाले स्वर्ग को प्राप्त होते हैं; रजस् में लीन होने वाले मनुष्य-लोक को लौटते हैं; तमस् में लीन होने वाले नरक में गिरते हैं — किन्तु जो तीनों गुणों से पूर्णतः परे उठ गए हैं, वे मुझ तक ही पहुँचते हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 25, श्लोक 22)

जीवन का प्रत्येक कोना गुणों से बुना है, और उनसे परे का सूत्र

भगवान् ने तब उद्धव को दिखाया कि कुछ भी तीन गुणों की बुनावट से नहीं बचता — और यह भी कि प्रत्येक वस्तु में एक सूत्र उनसे परे, स्वयं भगवान् तक भी जाता है। उनके लिए बिना फल की इच्छा से किया कर्तव्य सात्त्विक है; फल की इच्छा से किया कर्म राजसिक है; किसी को हानि पहुँचाने के लिए किया कर्म तामसिक है। शुद्ध आत्मा का ज्ञान सात्त्विक है; शरीर से जुड़ा ज्ञान राजसिक है; केवल खाने-पीने का मन्द ज्ञान तामसिक है — जबकि उन्हीं का ज्ञान तीनों से परे है। वन सात्त्विक निवास है, ग्राम राजसिक है, द्यूतगृह तामसिक है — किन्तु उनका अपना मन्दिर सम्पूर्ण रूप से गुणों से परे है।

वनं तु सात्त्विको वासो ग्रामो राजस उच्यते ।

तामसं द्यूतसदनं मन्त्रिकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥

vanam tu sāttviko vāso grāmo rājasa ucyate tāmasaṁ dyūta-sadanaṁ man-niketaṁ tu nirguṇam

अर्थ: वन सात्त्विक निवास है, ग्राम राजसिक कहा जाता है, और द्यूतगृह तामसिक है — किन्तु मेरा अपना मन्दिर तीनों गुणों से सम्पूर्णतः परे है। (स्कन्ध 11, अध्याय 25, श्लोक 25)

इसी प्रकार कर्ता भी तीन प्रकार का है — फल में अनासक्त सात्त्विक, फल के मोह में अन्धा राजसिक, विवेक खो चुका तामसिक — जबकि उर्नीही पर आश्रित कर्ता गुणों से परे है। श्रद्धा भी तीन रूपों में है — आध्यात्मिक सत्य में सात्त्विक, कर्मकाण्ड में राजसिक, असत्य में तामसिक — किन्तु उनकी उपासना में श्रद्धा तीनों से परे है। भोजन भी ऐसा ही है — सुपाच्य तथा सहज प्राप्त सात्त्विक, स्वाद-प्रिय राजसिक, अपवित्र तामसिक — किन्तु उन्हें अर्पित भोजन तीनों से परे। और आनन्द भी — आत्मा से सात्त्विक, इन्द्रियों से राजसिक, मद से तामसिक — जबकि उनके स्मरण से उत्पन्न आनन्द गुणों से परे है।



वन सात्त्विक निवास है, ग्राम राजसिक है, द्यूतगृह तामसिक है — किन्तु भगवान् का अपना मन्दिर, वे कहते हैं, तीनों गुणों से सम्पूर्णतः परे है (श्लोक 25)।

यह सब कुछ — भोजन, निवास, चाहा गया फल, जिन घड़ियों में मनुष्य जीता है, ज्ञान, कर्म, कर्ता के रूप में स्वभाव, श्रद्धा, चेतना की अवस्था, जीवन का रूप, तथा जीव की अन्तिम गति — भगवान् ने कहा, वास्तव में तीनों गुणों से ही निर्मित है। जो कुछ देखा, सुना या विचारा जाता है, वह निःसन्देह सत्त्व, रजस् तथा तमस् की ही बुनावट है।

इस उपदेश का मर्म यहीं छिपा है। भगवान् यह विस्तार केवल वर्गीकरण सिखाने नहीं देते, अपितु इसलिए कि उद्धव देख सकें कि जीवन का कोई भी कोना, कितना भी छोटा, गुणों से बचा नहीं है, और न ही केवल स्थान या आहार बदलने से इनकी पहुँच से बाहर जाया जा सकता है। एक ही सूत्र पुनः-पुनः गुणों से बाहर पाया जाता है — जो कुछ भगवान् की ओर मोड़ दिया जाए। समाधान इतना स्पष्ट है: गुणों से बाहर निकलने का मार्ग एक और गुण नहीं, अपितु उस एक के प्रति प्रेमपूर्ण समर्पण है, जो इनमें कभी बुना ही नहीं गया।

गुणों से परे का मार्ग — भक्ते, जो आत्मा को भगवान् तक ले जाती है

भगवान् ने अब इस बुनावट से बाहर निकलने का एक निश्चित मार्ग प्रकट किया।

एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबन्धनाः ।

येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः ।

भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥ ३२ ॥

etāḥ saṁsṛtayaḥ puṁso guṇa-karma-nibandhanāḥ yeneme nirjitāḥ saumya guṇā jīvena citta-jāḥ bhakti-yogena man-niṣṭho mad-bhāvāya prapadyate

अर्थ: हे सौम्य उद्धव, गुणों तथा उनसे प्रेरित कर्मों से बन्धी हुई यही जीव की भटकने हैं। किन्तु जिस जीव ने मन से उत्पन्न इन गुणों को पूर्णतः जीत लिया है — जो भक्ति के मार्ग से मुझमें दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित है — वही मेरे स्वरूप को प्राप्त करने योग्य बनता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 25, श्लोक 32)

अतः, यह दुर्लभ मानव-शरीर पाकर, जिसमें ही सच्चा ज्ञान सम्भव है, विवेकी जन को तीन गुणों की आसक्ति त्यागकर उनकी उपासना करनी चाहिए। आसक्ति से मुक्त, इन्द्रियों को वश में किए हुए, ऐसा साधक सत्त्व के अभ्यास से रजस् तथा तमस् पर विजय प्राप्त करे — और फिर, उनमें एकीकृत होकर, उसी निष्कामता के द्वारा, जो सत्त्व का ही उच्चतम फल है, सत्त्व को भी वश में कर ले। इस प्रकार मुक्त होकर, जीव अपनी सूक्ष्म पहचान, मन तथा अहंकार को त्यागकर, केवल उन्हीं को प्राप्त होता है।



जिस जीव ने भक्ति के द्वारा मन से उत्पन्न गुणों को जीत लिया है, तथा जो भगवान् में दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित है, वह उनके ही स्वरूप को प्राप्त करने योग्य बनता है (श्लोक 32)।

इस सूक्ष्म पहचान से पूर्णतः मुक्त होकर, तथा अब पूर्णतः उनसे भरकर, ऐसी आत्मा न तो इन्द्रियों की ओर बाहर भटकती है, न ही स्वयं पर विचार करने भीतर मुड़ती है।

जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसम्भवैः ।

मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्नान्तरश्चेत् ॥ ३६ ॥

jīvo jīva-vinirmukto guṇaiś cāśaya-sambhavaīḥ mayaiva brahmaṇā pūrṇo na bahir nāntarāś caret

अर्थ: अपनी ही जीवत्व-भावना तथा मन से उत्पन्न गुणों से मुक्त होकर, परब्रह्म मुझसे पूर्णतः भरा हुआ जीव न तो इन्द्रियों की ओर बाहर भटकता है, न ही भीतर स्वयं पर मुड़ता है — जीवित रहते ही मुक्त हो जाता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 25, श्लोक 36)



अपनी जीवत्व-भावना तथा मन से उत्पन्न गुणों से मुक्त होकर, भगवान् से पूर्णतः भरा जीव शान्ति में विश्राम करता है, जीवित रहते ही मुक्त (श्लोक 36)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रत्येक गुण जीव को अपनी ही रीति से आकार देता है। सत्त्व आत्मसंयम तथा शान्त सन्तोष को जन्म देता है; रजस् चंचल लालसा तथा महत्वाकांक्षा को; तमस् असहिष्णुता, विषाद तथा आलस्य को — और मनुष्य का अन्तःस्वभाव इन्हीं लक्षणों से पढ़ा जा सकता है (श्लोक 1-5, 9)।
2. “मैं” तथा “मेरा” भी गुणों से ही बुने हैं। अन्तःकरण तथा इन्द्रियों के सहारे किया गया हर व्यवहार तीनों गुणों का संयुक्त फल है, यहाँ तक कि मनुष्य धर्म, अर्थ तथा काम का अनुसरण किस भाव से करता है (श्लोक 6-8)।
3. गुण जीव को बाँधते हैं, भगवान् को कभी नहीं। सत्त्व, रजस् तथा तमस् केवल देहधारी के मन में उत्पन्न होते हैं; जीव ही शरीर तथा इन्द्रियों से चिपककर बाँधता है, जबकि भगवान् सदा अछूते रहते हैं (श्लोक 12)।
4. सत्त्व ही हृदय को भगवान् की ओर मोड़ता है। जब मन स्वच्छ, निर्भय तथा आसक्ति-रहित हो जाता है, सत्त्व उनकी ओर ले जाता है; रजस् चंचलता के रूप में प्रकट होता है, तमस् विवेक के सम्पूर्ण पतन के रूप में (श्लोक 13-18)।

5. जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति गुणों से उत्पन्न हैं; आत्मा इन तीनों में अपरिवर्तित बहती है। यही नियम मृत्यु के पश्चात् जीव की गति को भी शासित करता है — किन्तु तीनों गुणों से परे उठी आत्मा केवल भगवान् तक ही पहुँचती है (श्लोक 19-22)।

6. जीवन का कोई कोना गुणों से नहीं बचता — केवल जो उनकी ओर मोड़ दिया जाए। भोजन, निवास, कर्म, ज्ञान, श्रद्धा तथा आनन्द तीनों गुणों में विभाजित हैं, किन्तु जो कुछ भगवान् को अर्पित या उनके विषय में जाना जाता है, वह उनसे परे उठता है (श्लोक 23-31)।

7. भक्ति ही जीव को गुणों से परे, सत्त्व से भी परे ले जाती है। सत्त्व के अभ्यास से रजस् तथा तमस् जीते जाते हैं; भगवान् के साथ निष्काम एकत्व से सत्त्व भी जीता जाता है, और जीव जीवित रहते ही मुक्त हो जाता है (श्लोक 32-36)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में जो मुझे सबसे अधिक छूता है, वह भगवान् की निर्भीक सत्यता है। वे उद्धव को कोई एक चतुराई, कोई एक स्थान या भोजन नहीं देते जो उसे तीनों गुणों से चमत्कारिक ढंग से मुक्त कर दे — क्योंकि इस संसार में ऐसा कोई कोना नहीं जहाँ सत्त्व, रजस् तथा तमस् न पहुँचे हों। हमारे भाव, हमारी उपासना, हमारा “मैं” का भाव, हमारा भोजन तथा हमारे स्वप्न — सब इस बुनावट के ही सूत्र हैं। और फिर भी, भगवान् द्वारा बताई गई प्रत्येक श्रेणी के भीतर, एक अपवाद सदा लौट-लौट आता है: जो कुछ उन्हीं से सम्बन्धित किया जाए, वह तीनों गुणों से तुरन्त बाहर निकल जाता है। भक्ति एक और गुण नहीं है जो अन्य तीनों से प्रतिस्पर्धा करे; वह उस दीवार में एकमात्र द्वार है। इसीलिए अन्त में सत्त्व को भी छोड़ना पड़ता है — बल से नहीं, अपितु उनमें इतनी पूर्णता से विश्राम करके कि सत्त्व स्वयं ही अपनी पकड़ छोड़ दे।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज देखिए कि कौन-सा गुण आपके भीतर गतिमान है। जब सन्तोष या स्पष्टता अनुभव करें, सत्त्व को पहचानिए और उसे भगवान् के स्मरण की ओर ले जाने दीजिए। जब चंचलता या लालसा अनुभव करें, रजस् को पहचानिए, और तुरन्त कार्य करने के स्थान पर रुककर उसे भगवान् को अर्पित कीजिए। जब विषाद या आलस्य अनुभव करें, तमस् को पहचानिए, और संक्षेप में भी उनके नाम की ओर मुड़कर उसके खिंचाव का प्रतिरोध कीजिए। अपने अगले भोजन से पूर्व उसे मन से भगवान् को अर्पित कीजिए; अपने अगले कार्य को फल की कामना से नहीं, अपितु उनके प्रति कर्तव्य के रूप में सम्पन्न कीजिए। प्रत्येक छोटे चुनाव में, उस एक सूत्र में थोड़ा और विश्राम कीजिए जो कभी गुणों में बुना ही नहीं गया — स्वयं भगवान्। ऐसा करते हुए धीरे से जपिए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।”

उपसंहार

इस पञ्चविंश प्रवचन में, श्रीकृष्ण उद्धव को दिखाते हैं कि सत्त्व, रजस् तथा तमस् देहधारी जीव के गुणों, उपासना, चेतना, मृत्यु के पश्चात् की गति, तथा भोजन से श्रद्धा तक जीवन के प्रत्येक कोने को कितनी पूर्णता से शासित करते हैं। किन्तु इस सम्पूर्ण सूची के भीतर एक सत्य सदा चमकता रहता है: जो कुछ भगवान् की ओर मोड़ दिया जाए, वह तीनों गुणों से सम्पूर्णतः परे उठ जाता है। भक्तियोग के द्वारा, जीव सत्त्व से रजस् तथा तमस् को जीतता है, और अन्ततः उनमें पूर्णतः विश्राम करके सत्त्व को भी जीत लेता है — इस संसार में जीवित रहते ही मुक्त, भगवान् से पूर्ण होकर।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, पञ्चविंश प्रवचन, पृष्ठ 634–638।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बन्ध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-25-tin-gun-aur-param-gati-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट